राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ हैं

होली में कोई विशेष अर्चना व अनुष्ठान नहीं होता, जैसा कि आम तौर पर व्रतों, पर्व-त्योहारों के दिन किसी न किसी देवी-दवता की पूजा-आराधना और अंततः ईश्वरोपासना होती है; हालॉकि क्षेत्रवार होली के इतने रंग व रगत प्रचलित ह, जिनमें इसे पूर्णतः अव्यवहृत मानना भी ठीक नहीं होगा। होलिका-दहन के समय तो हर घर से अग्राशन-अंगौग आदि आहुति रूप में डालने की परंपरा सर्वत्र प्रचलित है। फिर भी यह भक्तिप्रधान पर्व नहीं है, बल्कि मस्तीप्रधान त्योहार है। इस दिन गरीब-अमीर सबके यहॉ अपनी-अपनी हैसियत के अनुरूप मौज-मस्ती और खाने-पीने का पूरा इंतजाम रहता है, जिसके लिए कोई बंधन न समय को लेकर होता है और न खाने-पीने के आइटम को लेकर। इसमें पूआ-पड़ी, गुझिया से काफी आगे-अलग आधुनिकतम अतिरेक व विकृति के कारण तरह-तरह के मास भक्षण और भिन्न-भिन्न तरह के शरबत, भॉग से लेकर देसी-विदेशी शराब-मदिरा तक सम्मिलित हो गई है। इस कारण भी होली कइयों को खूब भाती है। यह चैत्र मास की प्रथमा तिथि को मनाई जाती है। अंग्रेजी की जनवरी की तरह चैत्र हिन्दी का पहला महीना है। हिन्द पर्व-त्योहार इसी भारतीय नक्षत्र-महीने के अनुसार मनाए जाते हैं। इस प्रकार होली भारतीय नववर्ष की शुरुआत का अपने ढंग का जश्न है। इससे ठीक एक दिन पहले फाल्गुन मास की पूणमासी को पुराना साल खत्म होता है। इसी दिन होलिका-दहन होता है, जिसे 'संवत' भी कहते हैं। अपनी-अपनी कालगणना परंपरा के अनुरूप नए साल की अगवानी का जश्न विश्व के कोने-कोने में तरह-तरह से मनाया जाता है, मौज-मस्ती, आतिशबाजी की जाती है। वर्ष को अंतिम पूर्णिमा तिथि की रात्रि में होलिका दहन जहॉ पुराने के समापन का जयघोष है, वहीं होली नए के आगमन का उद्घोष। फाल्गुन तथा चैत्र महीने का समयांतराल मनोरम प्राकृतिक उपहार है, जहॉ पतझड़ के अन्तर्गत पुराने का अवसान और वसंत के अन्तर्गत नए के आगमन का संयोग सुलभ होता है। यह रवि फसल के पककर नवान्न के घर में आने का समय है। इस प्रकार होलिका-दहन तथा होली पुरातन-नूतन का संधि-स्थल है, जहॉ दोनों समीप आकर मिलते हैं और फिर एक-दूसरे से सदा के लिए अनंत दूरी की ओर बढ़ते जाते हैं। काल का यह प्रवाह सतत-शाश्वत है, जिसमें न जाने कितनी चेतनशील युग-वर्ष गणनाएँ विलीन हो चुकी हैं। किसी गणना-पद्धति से परे होली कालचक्र का वह स्तूप है, जहॉ से कभी भी कोई गिनती आरंभ कर सकता है।

पौराणिक मान्यता के अनुसार, हिरण्यकश्यपु की बहन होलिका के मरने और भक्त प्रहलाद के बच निकलने की याद में होलिका-दहन संपन्न होता है। इसके अतिरिक्त, कुछ शर्तो के साथ शिव से कभी न मरने का वरदान प्राप्त करने वाली ढोण्ढ़ा राक्षसी के इसी दिन जलकर मरने की कथा से भी यह जुड़ा है। होलिकोत्सव मनाने की परंपरा का उल्लेख जैमिनी, काठक गृह्यसूत्रों, कामसूत्र, भविष्योत्तरपुराण आदि ग्रथों में मिलता है, किन्तु वहॉ 'राका होलाका', 'होलाका,' 'नवानेष्टि' जैसे सूत्रनामों का प्रयोग हुआ है। भविष्योत्तरपुराण के अनुसार, युधिष्ठिर द्वारा होलिका-दहन और उसके उपरांत होली मनाने की परपरा-पद्धति के बारे में पूछने पर श्रीकृष्ण ने महाराज रघु और उन्हीं के समकालीन ढोण्ढ़ा राक्षसी की कथा सुनाई थी। वहॉ होली का चित्रण आज की होली से भिन्न नहीं है - 'प्रभातेविमले जाता हृयंगे भस्म च कारयेत्, सवांगे च ललाटे च क्रीडितव्यं पिशाचवत्।' सब लोगा के पिशाचवत धूल-धूसरित होकर गाने-बजाने आर नृत्य करने का उल्लेख है। द्वापर युग के श्रीकृष्ण और राधा की होली की परंपरा व्रज की होली के रूप में जीवित ही नहीं, मनमोहक रूप में काफी लोकप्रिय भी है; देश-विदेश में फैल चुकी है। राधा और कृष्ण के होली-गान में प्रेम-माधुर्य, क्रीड़ा-केलि, परिहास विलास की अद्भुत जागति होती है। इस होलो की धुन में कौन नहीं थिरक नहीं जाता - 'गोकुल में कान्हा नाचै मोहैं राधा पियारी। वेद पढ़त बिरमा भूले भूले बिरमचारी। मुनियन के ध्यान छूटै बोले जै जैकारी।' शिव-पार्वती, राधा-कृष्ण, राम, हनुमान जैसे हिन्दू आराध्यों की प्रतीकात्मक उपस्थिति के बावजूद होली-गीतों में माधुर्य और ओजस्विता तो है, पर धर्म-अध्यात्म व भक्ति भाव से दूरो ह। लेकिन भगवान के नाम की किसी रूप

में उपस्थिति होने के कारण होली पूर्णरूपेण धर्म व भक्ति से रिक्त भी नहीं हो सकती, आखिर इतना बड़ा त्योहार हुल्लड़बाजी तक कैसे सीमित हो सकता है?

गॉवों में फाल्गुन तथा चैत्र महीने म 'फाग' तथा 'चैता' के कीर्तन-गायन के साथ नृत्य, मौज-मस्ती चलती है। होली की रंगत 'वसंत पंचमी' से चढ़ने लगती है जो होली के पॉच दिन बाद 'रंग पंचमो' तक चलती है। यह श्रृंगारप्रधान उत्सव है। श्रृंगारिकता की अतिशयता में भौतिक मांसल प्रेम-प्यार, सौंदर्यानुभूति, हास-परिहास, नृत्य-गायन और गालियों आदि के भीतर श्लीलता-अश्लीलता की नियम-मर्यादाएॅ निश्चित करना कठिन होता है। सौंदर्य, प्रेम, मधुरता, भोग, मस्ती व मनोरंजन होली-रस के अंग-उपांग तो ह, पर वीरता-ओजस्विता की झलक भी जगह-जगह देखने को मिलती है। होली में सुख रंग लाल रक्त को भी द्योतित करता है; 'जब देश मे थी दीवाली, वा खेल रहे थे होली' में होली रंक्तरजित युद्ध को इगित करती है। प्राचीन युद्ध-प्रसंगों तथा स्वतंत्रता संग्राम से जोड़कर गाए जाने वाले बहुत-सारे होली-गीतों में वीर रस का प्रचुर परिपाक हुआ है। आज भी अनेक लोग होली के दिन पुराने गिल-शिकवे भुलाकर आपस में मिलते हैं, वहीं कुछ लोग पुरानी रंजिश व खुंदक भी इसी दिन निकालते हैं। यही कारण है कि होली के दिन लड़ाई-झगड़े का ग्राफ काफी ऊपर होता है। इनके लिए होली एक बहाना है अपने इंतकाम को अंजाम देने का। बहाने में दिखता कुछ और है और होता कुछ और है। अच्छे-बड़े के सब्जबाग की आड़ में तुच्छ व विकृत कार्य करने के लिए इसका सहारा लिया जाता है। गलत बात के पकड़ में आने पर भी अच्छे लक्ष्य के सन्निहित होने का बहाना सामने रखा जाता है। जब जिस प्रवृत्ति व शासन का दबदबा होता है, उससे इतर जाने वालों के ऊपर कई तरह के खतरे मॅडराते रहते ह। उन खतरों को सीधे मोल लेने की बजाय बहाना बना-बनाकर अपने मुकाम तक पहुँचने का प्रयास भी होता है। समय, परिस्थिति एवं देशकाल के अनुसार धर्मपालन व भक्ति करने के लिए भी बहाने की आवश्यकता पड़ती रही है; विशेषतः उस समय जब धर्म व भक्ति या तो दोयम दज वाले स्थान पर होती है, उसके प्रतिकूल चतुर्दिक सशक्त वातावरण होताहै।

उत्सव एक अवसर है जीवन में प्रेम-सौन्दर्य, वीरता-ओजस्विता, उमंग-उत्साह का संचार करने तथा अपने सदसकल्पा के प्रति निष्ठा-वान व समर्पित होकर मिथ्या, भ्रम, छद्म, प्रपंच के व्यूह को भेदने का। क्षणिक मौज-मस्ती, भोग-विलास की अतिशयता में वास्तविक आनन्द न खो जाए, ध्येय भ्रमित-विचलित न हो पाए - इसका विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। होली के रंग-अबीर, नृत्य-गान, हॅसी-मजाक, भॉग-मदिरा, सौन्दर्य-श्रृंगार, प्रेम-केलि, गाली-गीत सब इसी के लिए बनाए गए उपक्रम हैं। जब तक इनका जोर है, तब तक होली प्रेम-माधुर्य से सराबोर श्रृंगारिकता व ओजस्विता का त्योहार है, नहीं तो यह भगवान की परोक्ष भक्ति का बहाना तो है ही, ठीक वैसे ही जैसे रीतिकाव्य देखकर रीझने पर कवित्व-कला, अन्यथा राधा और कृष्ण के सुमिरन होने की उद्भावना व्यक्त है -

आगे कै सुकवि रीझिहैं तो कविताई
न त राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ हैं।

शोध के लिए मरो-मारो!

एम.ए. की कक्षा में पढ़ने के दरम्यान लघु शोध-प्रबंध का मार्गदर्शन प्राप्त कर चुकी छात्रा द्वारा रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली से पीएच.डी.-अनुसंधान हेतु उपयुक्त विषय-टॉपिक सुझाने के बहुत आग्रह पर उसकी रुचि के अनुरूप एक प्रसिद्ध समकालीन महिला साहित्यकार के साहित्य पर शोध-कार्य करने की सलाह अंततः दे दी। फिर क्या था, उसने तय समय के भीतर इसी विषय पर सिनोप्सिस बनाकर विश्वविद्यालय में जमा करा दिया। कुछ दिनों के उपरांत उस छात्रा ने आकर मलाल जाहिर किया कि शोध-समिति के नए मानदंडों के अनुसार किसी जिन्दा साहित्यकार पर शोध हो ही नहीं सकता। इसलिए अब तक की उसकी सारी मेहनत बर्बाद चली गई। मैंने मजाक में कहा कि अपनी मेहनत की बर्बादी की इतनी ही चिंता है और इस शोध-विषय के प्रति इतनी ही निष्ठा है तो उस साहित्यकार का वध

क्यों नहीं कर देती? जीवित होने के कारण ही तो उनके साहित्य के अनुशीलन में दिक्कत ह और फिर हम सबको भलीभॉति पता है कि साहित्यकार मरकर भी अपनी सार्वकालिक साहित्यिक विद्यमानता के कारण अमर ही रहता है। अंतर्ज्वार अधिक बढ़ा तो आगे कहा कि जिन्दा साहित्यकार के शोध-विषय होने के अपने खतरे तो हैं ही कि वे कभी शोधार्थी के साथ खड़े होकर मूर्त रूप में प्रकट हो जाएँ, उसके लिए जरूरी नौकरी के प्रबंध में लग जाएँ। तदुपरांत, अनेक जिन्दा साहित्यकारों के साहित्य पर हुए तथा हो रहे शोध-कार्यो का हवाला देते हुए अपने शोध-विषय वाली साहित्यकार का भी जिक्र आया, जो न केवल जिन्दा हैं, बल्कि मेरे अनुसंधान के बाद से भी उनकी दर्जनों कृतियॉ प्रकाशित हुई हैं और जिनकी राजनीतिक-सामाजिक क्षितिज पर भी देदीप्यमान उपस्थिति है। सदैव मदद के लिए तत्पर भी रहती हैं, काम हो या न हो - यह अलग बात है। 'मृत' रचनाकार जैसे प्रेमचंद, प्रसाद, पंत आदि ऐसा कदापि नहीं कर सकते, किसी को फोन भी नहीं कर सकते। शोध-समिति ने संभवतः इन्हीं स्थितियों को ध्यान में रखकर जिन्दा साहित्यकारों पर शोध-कार्य वर्जित किया हो ऐसा प्रतिबंध होना चाहिए या नहीं - यह सवालभारत भाग्य निर्माताओं के लिए बेमानी है।

किस कारण स

दिल्ली विश्वविद्यालय के कला संकाय भवन के भीतरी प्रांगण में एक तत्कालीन शोधार्थी मित्र जो इस समय इसी विश्वविद्यालय मेंप्राध्यापक क तौर पर कार्यरत हैं और जिनसे लगभग बारह वर्षो के बाद कुछ ही दिन पहले एक कार्यक्रम में क्षणिक मुलाकात हो पायी है, उनके सामने पीएच.डी.-अनुसंधान के दौरान 1999ई. की सर्दी की सुनहरी धूप में एक दिन अपने परम माननीय शोध निर्देशक न जाने क्यों अनायास व अप्रत्याशित रूप में कहने लगे कि 'तुम विष्णुकांत शास्त्री से कहो कि जिन कारणों से वे राज्यपाल बने हैं, उन्हीं कारणों से तुम्हें सीधे प्रोफेसर बना-बनवा देंगे।' पहली बार अनसुना करने पर उन्होंने पुनः इस वाक्य को 'जिन कारणों से' और 'सीधे प्रोफेसर' पर जोर देते हुए दुहराया। जिन कारणों के मतलब का साफ अंदाज राजनीतिक कारणों से लगता था। इस पर मित्र भी हैरान और हम भी पानी-पानी हो गए। पहली बार हमने इस पर कुछ नहीं कहा, पर ये बातें कुछ बुरी तब भी लगी थीं, लेकिन दुबारा कहने पर चुप न रह सका, काफी संयम से मजकिया लहजे में कहा, 'ठीक कह रहे हैं आप! जिन कारणों से 'वे' पहले हिन्दी विभाग में अध्यक्ष और प्रोफेसर बने, फिर राज्यसभा सांसद और अब राज्यपाल बने हैं, उन्हीं कारणों से हमें भी प्रोफेसर बन जाना चाहिए।' यह बात खुद उन पर यानी हमारे गाइड महोदय पर भी लागू होती थी, या यों कहें कि उन पर ही अधिक लागू थी, किन्तु इतनी संजीदगी से कही गई थी कि कोई अच्छी-बुरी प्रतिक्रिया तत्काल नहीं हुई, भले ही परोक्ष ढंग से जो भी सोचा-समझा गया हो। अपनी तरह की अच्छी-बुरी राजनीति के द्वारा पहले वे हिन्दी विभाग में रीडर, फिर अध्यक्ष बने और कालान्तर में प्रोफेसर बनने के कार्यक्रम में सफल रहे। शास्त्री जी भी नेकदिल इंसान साहित्यकार, विद्वान प्राध्यापक थे; संभवतः इसी कारण अटल बिहारी वाजपेयी जी और डॉ. मुरली मनोहर जोशी के आत्मीय स्नेही और राजनेता भी बन सके थे, पर घटिया राजनीतिक व्यवहार और ओछी साहित्यिक गुटबंदी से सदैव दूर रहे। वामपंथी साहित्यकारों से भी उनका रागात्मक संबंध था। दिल्ली विश्वविद्यालय में और प्रोफेसर पद पर न सही, भारत में एकाएक कोई प्रोफेसर बनता भी नहीं और हम तो इस लायक थे भी नहीं, पर बाहर सीधे व्याख्याता बिना तदर्थ रूप में पढ़ाए तो बन ही गया था और विपरीतताओं के बीच भी जब तक चाहा, तब तक पढ़ाया और जब उचित समय आया तो सीधे त्याग-पत्र देने में भी संकोच नहीं किया। यह निश्चित है कि संप्रग सरकार द्वारा शास्त्री जी को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल पद से अनायास बर्खास्त न किया गया होता, तो प्रशासन व प्रबंधन के माध्यम से निचले स्तर पर प्रायोजित रूप में बहुत-सारी समस्याएँ खड़ी नहीं हो पातीं। इस दौरान और अब भी यह विडंबना सालती है कि हम कैसे गए-गुजर जमाने में रह रहे हैं, जहॉ जो सबसे बड़ा ईष्यालु व दुष्ट दिमाग वाला है, वही अभिभावक, मार्गदर्शक और जज बन के बैठ जाता है और बाकी लोग भी उसी के हिसाब से चलने को उद्धत-उद्यत रहते हैं।